एवरेस्ट विजय के पचास साल

माधव केलकर

इस साल 29 मई को एवरेस्ट फतह के 50 वर्ष पूरे हुए हैं। सर्वप्रथम एवरेस्ट फतह करने वाली जोड़ी – एडमंड हिलेरी और तेनज़िंग नोर्गी के साहस को याद करने के लिए भारत-नेपाल में इस साल कुछ समारोह भी सम्पन्न हुए हैं। 50वीं सालगिरह के मौके पर कई अभियान दलों ने भी एवरेस्ट पर सफलता के झंडे गाड़े हैं। पर्वतारोहण के इतिहास में एवरेस्ट फतह एक मिसाल बन गई है।

इन सबके बीच में एक सवाल मुझे परेशान करता रहा है (हो सकता है आपको भी कर रहा हो) कि एवरेस्ट तो हज़ारों बरसों से मौजूद रहा है लेकिन इस पर चढ़ने का ख्याल हालिया सौ, सवा-सौ बरसों में ही क्यों आया। सिर्फ एवरेस्ट ही क्यों यूरोप, अमरीका, अफ्रीका में भी प्रमुख पर्वत चोटियों को पिछले 200 वर्षों में ही फतह

किया गया है। ऐसे ही कुछ सवालों के जवाब पाने की कोशिश हम यहां करेंगे।

प्राचीन काल से ही पर्वत इंसानों के लिए रहस्यमय बने रहे थे। इस छवि को बनाने में पहाड़ों पर मौजूद विशाल हिमनदों, हिमस्खलन, भू-स्खलन, लावा-मैग्मा के बहाव आदि प्राकृतिक आपदाओं का महत्वपूर्ण हाथ रहा होगा। शायद यही वजह है कि गगनचुंबी पर्वत चोटियों को ईश्वर का निवास स्थान माना जाने लगा। उदाहरण के लिए हिन्दु मान्यताओं में कैलाश शिखर पर भगवान शंकर का निवास माना जाता है। इसी तरह ग्रीस, मेक्सिको, जापान, तिब्बत आदि कई देशों में भी पर्वत शिखरों पर देवताओं का निवास माना जाता है।

संभव है पहाड़ों की इस रहस्यमयी-आध्यात्मिक छवि के कारण इंसान पहाड़ों से दूर रहे हों। लेकिन दूसरी ओर दुनिया में ज़्यादातर पहाड़ी इलाकों में लोग रहते आए हैं, इन्हीं पहाड़ों से लोग अपने लिए ज़रूरी संसाधन भी बटोरते रहे हैं। ऐसी कई जगहों से व्यापारिक रास्ते भी गुज़रते हैं। इतना सब कुछ होने के बावजूद लोग पर्वत चोटियों के बारे में कुछ जानना न चाहते हों, उन पर चढ़ने की इच्छा न होती होगी ऐसा मानना थोड़ा कठिन लगता है। यह भी संभव है कोई व्यक्ति किसी चोटी पर शौकिया तौर पर चढ़ा भी हो, लेकिन उसने इसका कोई लिखित ब्यौरा न रखा हो।

इतिहास में पर्वतारोहण .....

वैसे पर्वतारोहण का इतिहास ढूंढा जाए तो कहीं भी कोई सिलसिलेवार ब्यौरा नहीं मिलता कि अमुक-अमुक समय से इंसान ने पहाड़ों की चोटियों को एक चैलेंज के रूप में देखना शुरू किया। 16वीं सदी से पहले पहाड़ों पर चढ़ने के कुछ ब्यौरे ज़रूर मिलते हैं लेकिन ऐसे ब्यौरों की संख्या काफी कम है।

ऐतिहासिक स्रोतों के अनुसार 350 ईस्वी पूर्व में फिलिप ऑफ मेसेडोनिया (मकदूनिया) ने बाल्कन पर्वत शिखर पर कदम रखा था। किस्सा कुछ इस तरह से है कि फिलिप चाहता था कि किसी ऐसी पर्वत चोटी पर पहुंचा जाए जहां से एड्रियाटिक सागर और एजीयन सागर दोनों को देखा जा सके। इस इच्छा के चलते वह बाल्कन शिखर पर जा पहुंचा।

दूसरा किस्सा है माउंट एटना पर चढ़ने का। ईस्वी सन् 100 में सम्राट हैडरिन इस चोटी पर पहुंचे क्योंकि वे वहां से सूर्योदय देखना चाहते थे।

इसके बाद अगली कई शताब्दियों तक पहाड़ों पर चढ़ने का कोई ब्यौरा नहीं मिलता। 14वीं शताब्दी में जब यूरोप पुनर्जागरण के दौर से गुज़र

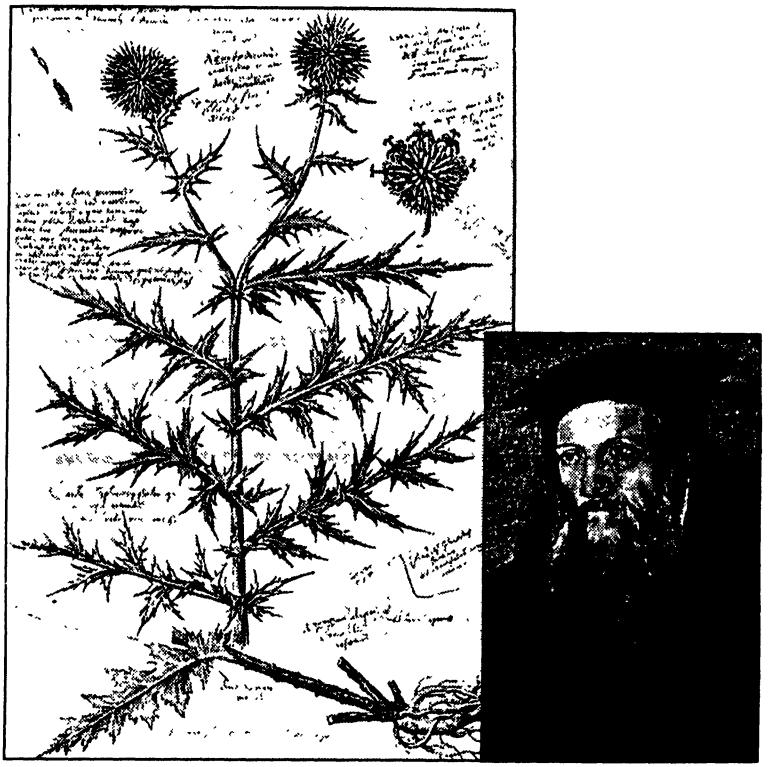

कोनार्ड गेसनेर: सोलहवीं सदी में गेसनेर ने आलप्स की कई चोटियों पर चढ़ाई की। उसका उद्देश्य था उन पहाड़ों पर से वनस्पतियों के नमूने इकट्ठा करना। उसे ऐसा चस्का लगा कि वह हर साल पहाड़ों पर चढ़ने जाने लगा। इसके लिए वह ऐसा समय चुनता था जब वहां खूब सारे फूल खिले हों। गेसनेर ने पहाड़ों पर वैज्ञानिक खोजबीन की परिपाटी डाली। गेसनेर का यह चित्र सन् 1564 में बनाया गया था।
साथ में उसके द्वारा बनाया इकिनोप्स स्फेरोसिफेल्स (Echinops Spherocephlus) का स्केच।

रहा था तब शायद एक बार फिर लोगों में प्रकृति के रहस्यों को जानने की जिज्ञासा ने ज़ोर पकड़ा। 14वीं शताब्दी में कवि पेट्रार्च द्वारा शौकिया तौर पर दक्षिणी फ्रांस के माउंट वेन्टॉक्स (लगभग 6270 फुट) पर चढ़ने का ज़िक्र मिलता है। इसके बाद से ऐसे ही कुछ और ब्यौरे मिलने शुरू होते हैं। 16वीं सदी में स्विस वैज्ञानिक कोनार्ड गेसनेर ने भी कई पवर्तों पर

चढ़ाई की क्योंकि वह पहाड़ों पर मौजूद वनस्पतियों का अध्ययन कर रहा था।

वैसे हमें यह बात भी याद रखनी होगी कि पुनर्जागरण काल से यूरोपीय समाज ने एक नई करवट ली थी। उस दौर में लोगों की रुचि नए भूभागों को खोजने, विज्ञान-कृषि वगैरह जैसे क्षेत्रों में नई तकनीकों को खोजने जैसे कामों में जाग उठी थी। इस नए दौर में लंबी समुद्री यात्राएं, नए भूभागों की खोज, नए भूभागों पर कब्ज़ा करना, समुद्री व्यापार मार्गों पर एकाधिकार स्थापित करना, प्राकृतिक संसाधनों की लूट, उपनिवेश स्थापित करने जैसी प्रवृतियां यूरोपीय समाज में उभर रही थीं।

पुनर्जागरण काल के साथ जिस पूंजीवादी व्यवस्था का विकास हो रहा था उसमें इंसान और प्रकृति के रिश्तों में भी बदलाव आ रहा था। इससे पहले भी इंसान नदियों, समुद्रों, पहाड़ों, जंगलों का इस्तेमाल करता था लेकिन ये सब उसके लिए किसी किस्म की चुनौती या चैलेंज की तरह नहीं थे। लेकिन इस नए दौर में जो सामाजिक मूल्य स्थापित हो रहे थे उनमें पहाड़ों की चोटियां, दुर्गम इलाके, तेज़ बहाव वाली नदियां, समुद्र, ज्वालामुखी आदि को प्रकृति द्वारा पेश की गई चुनौतियों के रूप में लिया जाने लगा था। हालांकि सरसरी तौर पर देखा जाए तो एवरेस्ट जैसी चोटियां या बर्फीले ध्रुवीय इलाके इंसानों से कोई मुकाबला नहीं कर रहे थे। प्रकृति के रहस्यों को जानना, समझना एक फर्क चीज़ है लेकिन यहां तो हर चोटी, हर नदी चुनौती थी और जब कभी आप उन चुनौतियों से पार पाते तो 'विजय या फतह' जैसे जुमले भी दिए जाते थे। यह परंपरा आज भी जारी है। एवरेस्ट-विजय, चंद्र-विजय जैसी शब्दावली स्थापित सामाजिक मूल्यों को ही दर्शाती है।

16वीं और 17वीं सदी में भूगोल और भूविज्ञान जैसे विषयों का विकास भी शुरू हुआ था। जिसके तहत धरती की बनावट, चट्टानों की पहचान, भूकम्प-ज्वालामुखी, नदियों, समुद्रों, मिट्टियों आदि का अध्ययन शुरू हुआ। अब पहाड़ों पर चढ़कर वहां से चट्टानों के नमूने लेना, वहां पर पाए जाने वाले जीव-वनस्पतियों का अध्ययन करना पर्वतारोहण का प्रमुख हिस्सा बन गया था। इन सब के साथ पहाड़ों पर चढ़ना एक खेल की तरह भी उभर रहा था। आलप्स पर्वत की कई चोटियों पर शौकिया रोमांच के लिए चढ़ाइयां की जा रही थीं। 1786 में आलप्स की एक प्रमुख चोटी माउंट ब्लांक पर फतह मिल गई थी।

भारत में ....

इन्हीं सब औपनिवेशिक प्रवृत्तियों के साथ भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी आई और उसने जल्दी ही भारत के

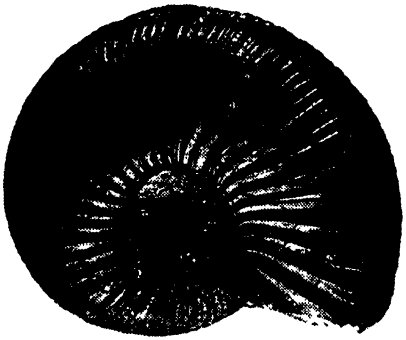

हिमालय में समुद्री जीवाश्म: 19वीं सदी में जब हिमालय के इलाके में खोजबीन शुरू हुई तब एक प्रमुख सवाल था कि हिमालय जैसी विशाल पर्वत शृंखला की उत्पत्ति कब और कैसे हुई? उस दौर में हिमालय के कुछ इलाकों में समुद्री जीवाश्म मिले। यहां हिमालय से प्राप्त 13 करोड़ साल पुराने समुद्री जीवाश्म का फोटोग्राफ दिया गया है। यह जीवाश्म 18 हज़ार फुट की ऊंचाई पर मिला था। ऐसे जीवाश्मों से यह बात पक्की हुई कि हिमालय की ये महाकाय परतें समुद्र की तलहटी से ही निर्मित हुई हैं।

एक बड़े भूभाग पर अपना शासन स्थापित कर लिया। उनकी रुचि भारत के प्राकृतिक संसाधनों पर कब्ज़ा जमाने में भी थी इसलिए कंपनी ने सीमावर्ती इलाकों में खोजी अभियान दल भेजकर कई तरह की जानकारियां एकत्रित करना शुरू किया। इन्हीं जानकारियों के आधार पर बंगाल के सर्वेयर जनरल जेम्स रेनेल ने 1780 में हिन्दुस्तान का पहला नक्शा प्रकाशित किया।

औपनिवेशिक हितों के चलते यह ज़रूरी हो गया था कि भारत के भूगोल को विस्तृत रूप से समझा जाए। इसलिए 1780 के बाद भारतीय उपमहाद्वीप के भौगोलिक नक्शे बनाने का काम एक बड़े प्रोजेक्ट के रूप में उभरकर सामने आया।

भारत में 1823 में ग्रेट ट्रिग्नोमेट्रिक सर्वे की शुरुआत हुई। इस सर्वे के दौरान भारत के विभिन्न भूभागों की समुद्र सतह से ऊंचाइयों का पता लगाया गया था। इसलिए अधिकांश पर्वत चोटियों की ऊंचाइयों के बारे में जानकारी मिल गई थी। 19वीं सदी के शुरुआती दशकों में हिमालय क्षेत्र में इस तरह के सर्वे कर पाना काफी कठिन काम था। उन दिनों नेपाल, भूटान, सिक्कम ने अपनी सीमाएं यूरोपीय लोगों के लिए बंद की हुई थीं। कुछ बरसों बाद भूटान,

खोजी पंडितः नैन सिंह

फकीरों के बाने में सर्वेयर: 19वीं सदी में भारतीय उपमहाद्वीप का सर्वे करना ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए एक प्रमुख प्रोजेक्ट बन गया था। उन दिनों नेपाल, भूटान, सिक्किम, तिब्बत आदि ने अपनी सीमाएं यूरोपीय नागरिकों के लिए बंद की हुई थीं। कुछ समय बाद सिक्किम और भूटान ने अपनी सीमाएं खोल दी। उस समय कई बार अंग्रेज़ सर्वेयर वेशभूषा बदल कर नेपाल-तिब्बत की सीमाओं में घुसकर अपना काम कर लेते थे। 1812 में एच. वाई. हेरसे और विलियम मूरक्रॉफ्ट भारतीय फकीरों की वेशभूषा में तिब्बत गए थे। इस चित्र को हेरसे ने खुद बनाया था।

हर बार इस तरह से चकमा दे पाना संभव नहीं था इसलिए हिमालय इलाके की जनजातियों के युवाओं को भी सर्वे के काम में शामिल किया गया। इन युवाओं को ट्रेनिंग देकर सर्वे कार्य में निपुण किया गया। इन्हें खोजी पंडित या पंडित एक्सप्लोरर कहा गया। ऐसे ही खोजी पंडितों में नैन सिंह का नाम काफी प्रमुखता से लिया जाता है। नैन सिंह ने एक मौके पर हिमालय क्षेत्र में तिब्बत -ल्हासा होते हुए लगभग 2000 किलोमीटर का सफर तय किया था। इस पूरे सफर के दौरान उसने गोपनीय तरीके से सर्वे भी किया और फील्ड नोट्स भी लिखे।

महिला पर्वतारोही: इस लेख को पढ़ते हुए आपको ऐसा लग रहा होगा कि पहाड़ों की चोटियों पर फतह का शौक सिर्फ पुरुषों को था। लेकिन चोटियों पर फतह पाने के मामले में महिलाएं भी पीछे नहीं थीं। 1838 में फ्रांसीसी महिला हेनरिटी डी एंगविले ने माउंट ब्लांक पर चढ़ाई की थी। बाद के वर्षों में और कई महिलाओं ने एंगविले से प्रेरणा ली। ऊपर दिए गए चित्र में एंगविले माउंट ब्लांक पर चढ़ाई से पहले अपने गाइड और सहायक दल का निरीक्षण कर रही है। यदि गौर करेंगे तो दिखेगा कि सहायक दल के मर्द तो पतलून वगैरह पहने हुए हैं लेकिन उनकी लीडर एंगविले एड़ियों तक लंबा स्कर्ट पहने हुई है। उस समय के फ्रांसीसी समाज में महिलाओं का पतलून पहनना अच्छा नहीं माना जाता था। इसलिए एंगविले ने लंबा स्कर्ट (जो पहाड़ों पर चढ़ाई के लिहाज़ से असुविधा-पूर्ण था) पहने हुए ही माउंट ब्लांक चोटी पर कदम रखा।

1840 के बाद एक अन्य महिला एयूब्रे ली ब्लांड ने भी एक पर्वत चोटी पर चढ़ने की हिम्मत दिखाई। ब्लांड ने स्कर्ट के भीतर पतलून पहन रखी थी। पहाड़ पर चढ़ते हुए स्कर्ट उतारकर पतलून पहने-पहने ही वो चोटी पर जा पहुंची। चोटी फतह के सुख को अनुभव करते हुए वो जब नीचे बेस कैम्प में आई तो मालूम पड़ा कि ब्लांड अपना स्कर्ट तो चोटी पर ही भूल आई है। अब ब्लांड को कहा गया कि वह तुरंत चोटी पर जाकर अपना स्कर्ट लेकर आए (यानी चोटी को एक बार फिर फतह करना होगा) अन्यथा पतलून वाले पहनावे की वजह से उस इलाके के प्रतिष्ठित सराय, धर्मशालाएं, धार्मिक स्थान उसे अपने यहां रुकने की अनुमति नहीं देंगे।

सिक्किम ने तो अपनी सीमाएं खोल दीं पर नेपाल अपनी नीति पर कायम रहा। लेकिन सर्वे तो किया जाना था इसलिए अंग्रेज़ों ने हिमालय इलाके की पहाड़ी जनजातियों के कई युवाओं को सर्वे के काम में जोड़कर उन्हें दक्ष बनाया। इन युवाओं को पंडित एक्सप्लोरर या खोजी पंडित कहा गया। बाद में इन युवाओं ने नेपाल व तिब्बत के इलाकों में घूमते हुए हिमालय की गहरी तहकीकात की। इन्हीं खोजी पंडितों में से एक ने हिमालय की सबसे ऊंची चोटी (29,002 फीट) की ऊंचाई को नापा था। बाद में इसी चोटी को 'माउंट एवरेस्ट' नाम दिया गया।

यदि उस दौर के यूरोप पर नज़र डाली जाए तो स्विस और इंग्लिश भद्रपुरुष यूरोप के पर्वतों पर एक के बाद एक फतह हासिल कर उन्हें बौना साबित कर रहे थे। लगभग उसी समय हिमालय के दर्रों-पहाड़ों पर दर्जनों सर्वेयर और उनके सहायक, सिपाही वगैरह अपनी रोज़ी-रोटी की खातिर अपने भारी-भरकम उपकरणों से नाप-जोख करते हुए आलप्स से भी ज़्यादा ऊंचाइयों तक पहुंच चुके थे।

हिमालयी चोटियों में रुचि

उन्नीसवीं सदी के मध्य में हिमालय को लेकर कई वैज्ञानिकों, शोधकर्त्ताओं की रुचि जागृत हुई। ये लोग हिमालय के भूगोल को समझने के लिए या जीव-जंतुओं, वनस्पतियों और जन-जीवन को जानने के लिए हिमालय की ऊंचाइयों पर पहुंचने लगे थे।

1890 से हिमालय की चोटियों पर फतह पाने के लिए नियमित रूप से पर्वतारोही दल कोशिश करने लगे। इस समय तक हिमालय पर चढ़ने वालों में एक परिवर्तन दिखाई देने लगा था। इस नई पीढी में वे लोग शामिल थे जो पहाड़ों पर चढ़ने को एक एडवेंचर या रोमांच की तरह देखते थे, हिमालय की गगनचुंबी चोटियों पर चढ़ना एक चुनौती के रूप में देखते थे। इन लोगों की रिसर्च वगैरह में विशेष रुचि नहीं थी। 1890 में शुरू हुई कोशिशें जल्द ही रंग लाईं और कुछ छोटी-मोटी चोटियों पर फतह मिल भी गई, लेकिन एवरेस्ट तक पहुंचना तो अभी बहुत दूर था।

एवरेस्ट तक पहुंचने का रास्ता नेपाल या तिब्बत से होकर गुज़रता था। दोनों देशों की सीमाएं यूरोपीय नागरिकों के लिए बंद थीं। 1921 में पहली बार एवरेस्ट अभियान शुरू हुआ। इसकी खास वजह थी कि दलाई लामा इस बात के लिए राज़ी हो गए थे कि एवरेस्ट अभियान दल उनके देश की सीमाओं से होकर गुज़र सकते हैं। 1922 में फिर से एवरेस्ट तक पहुंचने की कोशिश की गई। हालांकि ये दोनों अभियान अपने लक्ष्य को नहीं साध सके लेकिन ये क्रमशः 26,700 फीट

चोटियों के नाम

हिमालय की सर्वोच्च चोटी को तिब्बत में 'शोमोलुंगम' नाम से जाना जाता था और नेपाल में 'सागरमाथा' नाम से पुकारा जाता था। अंग्रेज़ सर्वे टीम ने भी इस चोटी को सबसे ऊंचे शिखर के रूप में पहचाना और इसे चोटी नंबर-15 कहा। उस समय इस चोटी के लिए 'गौरीशंकर', 'देवधुंगा' आदि नाम भी सुझाए गए थे लेकिन तत्कालीन सर्वेयर जनरल ने सुझाव रखा कि सर्वोच्च चोटी का नाम भूतपूर्व सर्वेयर जनरल की याद में 'एवरेस्ट' रखना चाहिए। तब से 'एवरेस्ट' नाम अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित हो गया और शोमोलुंगम और सागरमाथा – तिब्बत और नेपाल की विरासत बनकर रह गए।

ऐसा नहीं है कि इस तरह के हादसे सिर्फ भारतीय उपमहाद्वीप में ही हुए हों। नामकरण की एक नज़ीर कुछ ऐसी भी है – यहां बात पूर्व सोवियत संघ की हो रही है। 1928 में सोवियत इलाके में पामीर पठार की चोटी काफमेन (23,406 फीट) पर फतह पाई गई। उस समय यह सबसे ऊंची सोवियत चोटी थी। सोवियत सरकार ने इसका नाम 'लेनिन चोटी' रख दिया। पांच साल बाद 1933 में स्टालिन के शासन काल में एक और ऊंची चोटी पर पर्वतारोही चढ़े तो पता चला यह 24,590 फीट ऊंची थी। यानी लेनिन चोटी से भी ऊंची; बहरहाल, इस चोटी को 'स्टालिन चोटी' नाम दिया गया। स्टालिन के बाद आए ख्रुसचेव ने स्टालिन के द्वारा शुरू किए गए कार्यक्रमों में सुधार का बीड़ा उठाया था इसलिए 'स्टालिन चोटी' का नाम बदलकर 'कम्यूनिज़्म चोटी' रख दिया गया।

और 27,230 फीट की ऊंचाई तक पहुंचने में सफल रहे। यहां इन पर्वतारोहियों की कुछ व्यवहारिक कठिनाइयों को समझना ज़रूरी है। एवरेस्ट अभियान से पहले दुनिया में कुछ ही लोग 20,000 फीट से ज़्यादा ऊंचाई तक पहुंच सके थे। 29,000 फीट की ऊंचाई पर शरीर काम करेगा इसे लेकर ही आशंकाएं व्यक्त की जा रही थीं। बर्फ में से होते हुए ऊपर चढ़ने के साधन, ठंड से बचाव के कपड़े-टेंट वगैरह कई बार अपर्याप्त महसूस होते थे। एवरेस्ट जैसी ऊंचाई पर ऑक्सीजन प्रदान करने वाले उपकरणों की ज़रूरत थी। उस समय मौजूद उपकरण भारी, पुरानी तकनीक वाले होने के साथ-साथ कम विश्वसनीय थे। इन सबके साथ सबसे महत्वपूर्ण ज़रूरत थी अंतिम शिखर तक चढ़ाई के वक्त एवरेस्ट पर अच्छे

ऑक्सीजन उपकरण की जांच-पड़ताल: 1953 के एवरेस्ट अभियान के दौरान एवरेस्ट शिखर से कुछ सौ फीट नीचे हिलेरी, तेनज़िंग के ऑक्सीजन उपकरण की जांच करते हुए। इससे पहले कई पर्वतारोहियों के साथ ऐसा भी हुआ कि उनके ऑक्सीजन देने वाले उपकरण ऐन मौके पर दगा दे गए और उन्हें मायूस होकर लौटना पड़ा। हिलेरी ऐसा कोई भी जोखिम नहीं उठाना चाहता था। बाद में अपने एवरेस्ट के संस्मरणों में हिलेरी ने बताया कि एवरेस्ट की निर्णायक चढ़ाई से पहले उन्होंने ऑक्सीजन की खपत और ऑक्सीजन की उपलब्धता का कई बार हिसाब लगाया था।

मौसम का होना।

इसके बाद एवरेस्ट के लिए 6-7 दलों ने कोशिश की लेकिन सफलता किसी के हाथ नहीं लगी। ये सभी कोशिशें तिब्बत वाले रास्ते से की गई थीं।

करो या मरो

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद नेपाल ने 1949 में अपनी सीमाओं से एवरेस्ट अभियान दलों को गुज़रने की अनुमति दी। अब एवरेस्ट

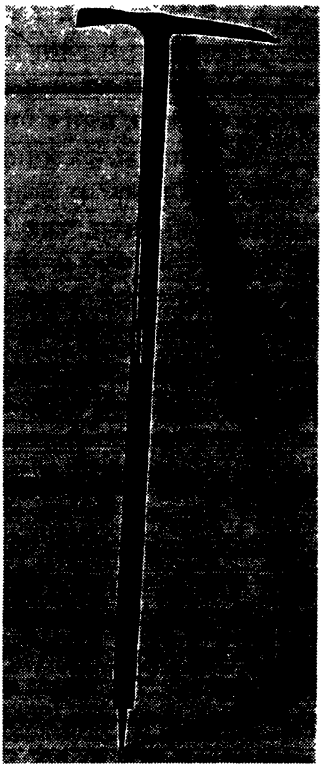

मेलोरी या इरविन की कुल्हाड़ी: 1924 के एवरेस्ट अभियान के दो पर्वतारोही जॉर्ज मेलोरी और एंड्रयू इरविन एवरेस्ट तक पहुंचने की कोशिश के दौरान लापता हो गए थे। काफी खोजबीन के बाद भी यह पता न चल सका कि मेलोरी-इरविन एवरेस्ट शिखर तक पहुंच पाए थे या नहीं? लेकिन एक बात तय थी कि ये दोनों एक हादसे में मारे गए। लगभग 30 साल बाद 27,600 फीट की ऊंचाई पर यह बर्फ काटने वाली कुल्हाड़ी एक अभियान दल को मिली थी। यह कुल्हाड़ी मेलोरी की है या इरविन की यह पता नहीं चल सका। 1999 में एक अन्य अभियान दल को बर्फ में दबा मेलोरी का शव मिला था।

तक पहुंचने के लिए दक्षिणी रास्ता भी खुल गया था।

1953 का ब्रिटिश अभियान दल 'करो या मरो' वाली स्थिति में था। 1952 का स्विस दल एवरेस्ट तक लगभग पहुंच ही गया था। एक साल बाद स्विस दल दोबारा कोशिश करने वाला था। इस लिहाज़ से ब्रिटिश टुकड़ी को जो कुछ करना था इसी साल कर लेना था।

जॉन हंट के नेतृत्व में 13 सदस्यों वाले दल ने सफर शुरू किया। 26,000 फीट की ऊंचाई पर कैम्प लगाने के बाद आखिरी 3000 फीट के निर्णायक सफर के लिए चार सदस्यों का चयन किया गया। पहले दो सदस्य जब लक्ष्य पाने में असफल रहे तो एडमंड हिलेरी और तेनज़िंग नोर्गी को मौका मिला। इन दोनों ने 29 मई 1953 को एवरेस्ट फतह कर दिखाया। दुनिया की सबसे ऊंची चोटी को इंसानी कदमों ने नाप लिया था। उस चोटी पर 15 मिनट गुज़ारने के बाद वापसी का सफर शुरू हुआ।

एवरेस्ट के बाद क्या

हिमालय की 15 सर्वोच्च चोटियों पर फतह पाने के बाद नए रास्तों से इन चोटियों तक पहुंचने की कोशिशें की गई। पुरानी पीढ़ी के कुछ पर्वतारोही यह भी सोचते हैं कि एक बार एवरेस्ट पर पहुंचने के बाद पर्वतारोहियों के लिए करने को कुछ खास बचा नहीं था। बाद में सिर्फ विविध रिकॉर्ड कायम करने का काम ही रह गया था। शायद उनकी बात में कुछ दम है क्योंकि यदि आज रिकॉर्ड बुक उठाकर देखी जाए तो विगत 50 वर्षों में एवरेस्ट पर 1300 से ज़्यादा लोग पहुंच चुके हैं। इन एवरेस्ट विजेताओं को भी विविध श्रेणियों में बांटा गया है जैसे एवरेस्ट पर पहुंचने वाला – पहला भारतीय, पहला जापानी, पहली महिला, पहले पति-पत्नी, पहले भाई-बहन, बाप-बेटा, सबसे बूढ़ा, सबसे जवान, चार बार चढ़ने वाला, दस बार चढ़ने वाला, बिना ऑक्सीजन चढ़ने वाला, धीमा चढ़ने वाला, तेज़ चढ़ने वाला ..... आदि। मौजूदा दौर में कोई अभियान दल आज कोई रिकॉर्ड बनाता है तो एकाध बार तो ऐसा भी हुआ है कि दो दिन बाद वह रिकॉर्ड टूट चुका होता है (जैसा कि हाल में गोल्डन जुबली वर्ष में हुआ है)। इन सब को देखकर सचमुच ऐसा लगता है कि अब एवरेस्ट एक चुनौती कम है लेकिन रिकॉर्ड बनाने का औज़ार ज़रूर बन गया है। एवरेस्ट फतह के पचास साल बाद भी लोगों के जोश में कोई कमी नहीं आई है। तकनीकी बदलावों के चलते एवरेस्ट पर चढ़ना अब पहले जैसा चुनौती भरा रहा भी नहीं है। पहले के अभियानों में दल के दो-चार सदस्यों को ही चोटी तक पहुंचने का मौका दिया जाता था। लेकिन अब ऐसा नहीं है। अब हर साल दर्जनों अभियान दल मोटी फीस चुका कर थोक के भाव में एवरेस्ट फतह का सुख लेते हैं। कई बार एवरेस्ट के पर्यावरण को खतरा बताते हुए अभियान दलों पर रोक लगाने की मांग भी उठती रही है, पर्वतारोहियों की संख्या को कम करने की बातें भी हुई हैं लेकिन सब जस-का-तस चल रहा है। किसी समय पर्वतारोहण एक रोमांचक अनुभव होता था, लेकिन अब रोमांचक खेल के साथ-साथ एक उद्योग बनकर उभर रहा है।

ध्रुव केलकर: संदर्भ पत्रिका से संबद्ध।